वर्ष : 1, अंक : 3, अक्टूबर–दिसंबर, 2011

पारस–परस

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की प्रतिनिधि एवं संग्रहणीय अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिकी

माँ विशेषांक

श्रृद्धांजलि

स्वर्गीय माताजी की प्रथम पुण्य तिथि
(8 अक्टूबर)
पर उन्हें शत् शत् नमन्

मां ममता का सागर है तू
मां करुणा का आगर है तू
नित पल छलके प्रतिपल ढरके
अमृतमयी वह गागर है तू
दया, प्रेम, अनुराग तुम्ही से
तुम सा नहीं है कोई नेक
मां, हैं तेरे रूप अनेक

डा॰ अनिल कुमार पाठक

वर्ष : 1, अंक : 3, अक्टूबर–दिसम्बर, 2011

माँ विशेषांक

पारस-परस

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की प्रतिनिधि एवं संग्रहणीय अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिकी

अनुक्रमणिका

संरक्षक मंडल
डॉ. एल.पी. पाण्डेय;
अभिमन्यु कुमार पाठक;
अरुण कुमार पाठक;
राजेश प्रकाश;
डॉ. अशोक मधुप

प्रधान संपादक
डा॰ सुनील जोगी

संपादक
शिवकुमार बिलग्रामी

उप–संपादक
गार्गी शर्मा (एडवोकेट)

संपादकीय कार्यालय
418, मीडिया टाइम्स अपार्टमेंट
अभयखण्ड–चार, इंदिरापुरम
गाजियाबाद – 201012
फोन : 0120–2607558

लेआउट एवं टाइपसेटिंगः
आप्शन प्रिन्टोफास्ट,
पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एरिया नई दिल्ली – 92

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक एवं प्रकाशक द्वारा **प्रसून प्रतिष्ठान** के लिए **डॉ. अनिल कुमार पाठक** द्वारा **आप्शन प्रिन्टोफास्ट पटपड़गंज इन्ड. एरिया** से मुद्रित एवं सी–49, बटलर पैलेस कॉलोनी, जॉपलिंग रोड़, लखनऊ से प्रकाशित ।

पारस–परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है । पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

संपादकीय		2
पाठकों की पाती		3
श्रद्धा सुमन		
आशीष	*डॉ. अनिल कुमार पाठक*	4
कालजयी		
गीत की कड़ी	*पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून'*	5
दे दी हमें आजादी	*पंडित प्रदीप शर्मा*	6
आद्यन्त	*धर्मवीर भारती*	7
ओ देशवासियो....	*डा॰ हरिवंश राय बच्चन*	8
किस्सा जनतंत्र	*सुदामा पाण्डेय धूमिल*	9
लाख पुकारो	*अनजान*	10
मातृ–वाणी		
माँ हैं तेरे रूप अनेक	*डा॰ अनिल कुमार पाठक*	11
एक मृतात्मा की वसीयत	*लक्ष्मीकांत वर्मा*	12–13
महाशक्ति	*इंदीवर*	14
माँ	*मीनाक्षी दास*	15
बेसन की सोंधी रोटी	*निदा फाजली*	16
अनाथ की माँ	*शिवकुमार बिलग्रामी*	17
समय के सारथी		
आाओ फिर से दिया जलाएं	*अटल बिहारी वाजपेयी*	18
संन्यासी हो गया सवेरा	*बी॰ एल॰ गौड़*	19
प्रवासी के बोल		
औरतें जब हंसती हैं	*सौमित्र सक्सेना*	20–21
राम भरोसे	*पूर्णिमा वर्मन*	22
कौए ने कोएल से पूछा	*प्राण शर्मा*	23
कविता में कितने क ?	*शमशाद इलाही अंसारी*	24
आस्था का उजाला	*पुष्पिता*	25–26
रिश्तों की खातिर	*भावना कुँअर*	27
है याद तुम्हारा....	*श्रृद्धा जैन*	28
नारी स्वर		
शब्द नहीं कह पाते	*ऋतु पल्लवी*	29–30
कसाई गिरी	*वर्तिका नन्दा*	31
बिटिया को सीख	*पूनम कुमारी*	32
दक्ष गृहिणी	*आकांक्षा पारे*	33
यों तो अपने....	*मीरा शलभ*	34
नवांकुर		
आतंक	*पीयूष पाण्डेय*	35–36
गुमशुदा की तलाश	*अशोक कुमार शुक्ला*	37
कुछ नये रंग	*शिखा कम्बोज*	38
आरजू	*चैतन्य मूर्ति*	39
खुली पाठशाला	*तारा दत्त निर्विरोध*	40

संपादकीय

तेरी हर बात चलकर यूं भी मेरे जी से आती है
कि जैसे याद की खुशबू किसी हिचकी से आती है
मुझे आती है तेरे बदन से ऐ माँ वही खुशबू
जो एक पूजा के दीपक में पिघलते घी से आती है

'मां' एक शब्द ही नही अपितु एक खूबसूरत एहसास भी है। प्रसवोपरांत किसी मां में वात्सल्य और ममता का जो अजस्र वेग प्रवाहित होता है, वह ममता, प्रेम और भक्ति की पराकाष्ठा है। प्रेम में समर्पण और भक्ति में स्वीकार्यता का जो भाव होता है 'माँ' की ममता में वही भाव और घनीभूत होकर निर्मल वात्सल्य के रूप में प्रकट होता है। वात्सल्य, प्रेम और ममता का यह अंकुरण जब किसी व्यक्तित्व में वट वृक्ष की तरह गहराई तक जड़ें जमा लेता है तो वह 'नित्यानंद' की स्थिति में पहुँच जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि हमारे लिए 'माँ' ही एक ऐसा अनुभवसिद्ध और सुलभ मार्गदर्शक है जो अपने वात्सल्य निर्झर से हमारे लिए जीवन–व्यापार हेतु आवश्यक ज्ञान के अतिरिक्त जीवन–धर्म के लिए अत्यावश्यक मानवीय प्रेम का मार्ग प्रशस्त करती है।

भारतीय संस्कृति में सिर्फ जननी को ही 'माँ' नहीं कहा गया है अपितु जीवन धात्री पृथ्वी और जीवन का पोषण करने वाली प्रकृति सहित उस प्रत्येक गोचर अगोचर शक्ति को भी माँ का मान दिया गया है जो हमारे जीवन को उन्नत बनाती है। अस्तु, माँ प्रत्येक जीवन, विशेषकर मनुष्य जीवन की एक पूँजी है। किसी फिल्म में बोला गया यह संवाद हम सबको अच्छी तरह याद है जिसमें बड़ा भाई कहता है कि 'मेरे पास गाड़ी है, बँगला है, बैंक बैंलेस है और तुम्हारे पास क्या है ? इस पर छोटा भाई उत्तर देता है – 'मेरे पास माँ है।' माँ की यह पूँजी बड़े भाई की सारी संपत्ति पर भारी पड़ती है। माँ है ही ऐसी पूँजी।

मनुष्य अपने जीवन को साधन संपन्न बनाने की आपाधापी में कुछ इस तरह खोता जा रहा है कि उसे इस बात का भान ही नही कि वह जीवन को सुख संपन्न बनाने वाली कितनी चीजों से दूर होता जा रहा है। माँ हमारे जीवन में कितना अधिक महत्त्व रखती है और अपने स्नेह–आशीषों से हमारे जीवन को कितना अधिक सुख संपन्न बनाती है इसी अटल सत्य की ओर अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित करने के लिए हम पारस–परस का यह अंक माँ विशेषांक के रूप में निकाल रहे हैं। इसी उद्देश्य से पत्रिका के इस अंक में एक नया कॉलम 'मातृ–वाणी' दिया गया है और उसमें माँ पर कुछ अनूठी और अनसुनी कविताएं दी गयी हैं। आशा है ये कविताएं पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करेंगी और अपना मनोरथ पूरा करेंगी। पत्रिका के आमुख के पृष्ठ भाग पर इस पत्रिका की प्रणेता पूज्य माता जी (धर्मपत्नी स्वर्गीय पारसनाथ पाठक प्रसून) की प्रथम पुण्य तिथि (8 अक्टूबर) पर हम उनका चित्र प्रकाशित कर रहें हैं और उन्हें अपनी ओर से विनम्र श्रृद्धांजलि अर्पित कर रहे हैं।

इस अंक में हम सृजन–स्मरण के रूप में स्वर्गीय सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' और स्वर्गीय श्री धर्मवीर भारती की कविताओं के साथ–साथ उनके चित्र भी अंतिम पृष्ठों पर प्रकाशित कर रहे हैं। धूमिल का जन्म 9 नवम्बर, 1936 को तथा धर्मवीर भारती का जन्म 25 दिसम्बर, 1926 को हुआ था। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का जन्मदिन 2 अक्टूबर को है, इसलिए उनकी पुण्यस्मृति को अपने दिलों में ताजा रखने के लिए हम स्वर्गीय पं॰ प्रदीप शर्मा का गीत 'दे दी हमे आजादी' प्रकाशित कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त हम सदैव की भांति कालजयी, समय के सारथी, प्रवासी के बोल, नारी स्वर और नवांकुर कालम में हिन्दी साहित्य की उत्कृष्ट रचनांए दे रहे हैं। आशा है ये रचनाएं हिन्दी काव्य पिपासुओं की कुछ अच्छा काव्य पढ़ने की तृष्णा को शांत करेंगी।

(संपादक)

माननीय संपादक महोदय,

पारस–परस का द्वितीय अंक मिला। इस अंक में प्रकाशित रचनाएं पढीं। सभी रचनाएं अच्छी लगीं। विशेषकर भगवती चरण वर्मा की कविता–देखो, सोचो, समझों काफी अच्छी और सार्थक कविता लगी। लगता है आज के दौर में इस तरह की उद्देश्यपूर्ण और मार्गदर्शी कविताएं नहीं लिखी जा रही हैं। इसी अंक में श्रीकृष्ण सरल की एक कविता छोड़ो लीक–पुरानी प्रकाशित हुई है। यह कविता भी एक कालजयी कविता है। इसको मैंने कुछ वर्ष पहले भी पढ़ा था लेकिन यह कविता आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी पहले थी। प्रवासी के बोल, कॉलम में डॉ॰ अमिता तिवारी की कविता प्रकाशित हुई है। यह कविता मुझे अच्छी लगी। मैं उन्हें साधुवाद देना चाहता था। लेकिन इस पत्रिका में उनका कोई संपर्क सूत्र नहीं दिया है। अच्छा हो यदि आप उन रचनाकारों का पता भी पत्रिका में दें जिनकी रचनाएं प्रकाशित होती हैं, तो पाठक रचनाकार को अपनी प्रतिक्रियाओं से अवगत कर सकेंगें।

अध्ययन अवस्थी
कानपुर

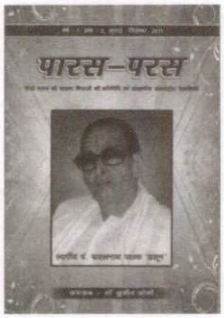

आदरणीय महोदय,

इस बार के अंक में कुछ नया देखने को मिला। आपने कवर पृष्ठों के अंदर और बाहर ख्याति प्राप्त कवियों के सृजन–स्मरण स्वरूप जो चित्र प्रकाशित किये हैं, वो काफी अच्छे लगे और इससे यह भी पता चला कि इस पत्रिका के कर्णधार साहित्य सेवा के प्रति कितने कटिबद्ध हैं। आपको एक सुझाव देना चाहूँगा कि पारस–परस के अगले अंक में धूमिल और धर्मवीर भारती की रचनाएं कालजयी स्तंभ में अवश्य प्रकाशित करें क्योंकि इन कवियों की जन्मतिथि नवंबर–दिसंबर माह में हैं। यदि संभव हो तो सृजन–स्मरण स्वरूप इनका चित्र भी प्रकाशित करें।

कमल चौरसिया
ठाकुरगंज, लखनऊ

सूचना

पारस–परस के पाठकों और योगदानकर्त्ताओं के लिए एक खुश खबरी यह है कि 'प्रसून प्रतिष्ठान प्रबंधन' ने स्वर्गीय पारसनाथ पाठक 'प्रसून' की स्मृति में एक 'प्रसून प्रोत्साहन पुरस्कार' शुरू करने का निर्णय लिया है। इस पुरस्कार की राशि 1100 रूपये नकद है। यह पुरस्कार प्रत्येक अंक में प्रकाशित किसी ऐसी उत्कृष्ट रचना को दिया जायेगा जिसमें काव्य का मर्म और धर्म समाहित हो और जो काव्य की कसौटी पर खरी उतरती है। यदि एक से अधिक रचनाएं पुरस्कृत करने योग्य पायी गयीं तो राशि को तद्नुसार विभक्त कर दिया जायेगा।

पुरस्कार के बारे में अंतिम निर्णय प्रसून प्रतिष्ठान प्रबंधन का होगा और इस बारे में प्रबंधन के निर्णय को चुनौती नहीं दी जा सकती।

रचनाकार अपनी रचनाएं कृपया निम्नलिखित पते पर भेजें–

संपादक : पारस–परस
418, मीडिया टाइम्स अपार्टमेंट
अभय खण्ड–चार, इंदिरापुरम
गजियाबाद (उत्तर प्रदेश)
email : paarasparas.pathak@gmail.com

आशीष

– डा0 अनिल कुमार पाठक

कभी न खोना तुम ढाढ़स,
मेरे जैसा रखना साहस,
घबरा कर बाधा कठिनाई से
हो मत जाना पथ से वापस,
सूक्ष्म रूप में पास सदा मैं खड़ा हुआ,
आशीष स्नेह से आँचल मेरा भरा हुआ ।।1।।

विरथ भले हो जाना,
जीवन भर तुम पदगामी,
पर रहना बेटा हरदम,
तुम सच्चरित्र, सद्गामी,
राह दिखाऊंगा चलकर जिस पर मैं बड़ा हुआ,
आशीष स्नेह से आँचल मेरा भरा हुआ ।।2।।

ज्ञान ज्योति से तिमिर हटेगा,
ध्वज लहरेगा सच्चाई का,
बस अहंकार मत करना,
नश्वर क्षणिक ऊंचाई का,
जग देखेगा तुम्हें, शिखर पर चढ़ा हुआ,
आशीष स्नेह से आँचल मेरा भरा हुआ ।।3।।

गीत की कड़ी

– पं0 पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

गीत की कड़ी, जड़ी सी रह गई ।

कवि मौन हो गया, कि चन्द्र सो गया,
न लिख सका समाज की दशा
तारिका खड़ी सी रह गई ।।
गीत की कड़ी, जड़ी सी रह गई ।।

आकाश देखता रहा,
मेघ अश्रु–नीर सा बहा के रो पड़ा,
कली सिहर के फट गई ।।
गीत की कड़ी, जड़ी सी रह गई ।।

क्षुब्ध बालकों के भूख–ज्वाल से,
चाँदनी सी बालिका के अंग ताप से,
जेठ की दुपहरी भी झुलस गई ।
तो गीत की दशा कहाँ कही गई ।।
गीत की कड़ी, जड़ी सी रह गई ।।

भिक्षुकों की आर्त–आह औ पुकार से,
बन्दियों की एक स्वर भरी हुँकार से,
कामिनी की चूड़ियों की तेज धार से,
बादलों की पंक्ति फट गई ।।
गीत की कड़ी, जड़ी सी रह गई ।।

रुक गया प्रवाह नद–नदी–नदीश का
झुक गया त्रिशूल गिरिपति गिरीश का
प्रचण्ड झोंक यों चला कि लेखनी खिसक गयी ।।
गीत की कड़ी, जड़ी सी रह गई ।।

एक पंक्ति जो लिखा तो अन्धकार छा गया ।
आह–वेदना के बादलों से काव्य ढँक गया ।
पूर्ण कौन कर सके अधलिखे समाज की दशा,
पागलों–सी रीति हो गई ।।
गीत की कड़ी, जड़ी सी रह गई ।।

न पूर्ण हो सकी, न पूर्ण हो सके ।
है रही न पूर्ण, यह समाजगीत की कड़ी,
कल्पना औ भावना सिहर के रह गई ।।
गीत की कड़ी जड़ी सी रह गई ।।

दे दी हमें आज़ादी

—पंडित प्रदीप शर्मा

दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल
आंधी में भी जलती रही गांधी तेरी मशाल
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल

धरती पे लड़ी तूने अजब ढंग की लड़ाई
दागी न कहीं तोप न बंदूक चलाई
दुश्मन के किले पर भी न की तूने चढ़ाई
वाह रे फकीर खूब करामात दिखाई
चुटकी मे दुश्मनों को दिया देश से निकाल
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल

शतरंज बिछा कर यहाँ बैठा था जमाना
लगता था कि मुश्किल है फिरंगी को हराना
टक्कर थी बड़े ज़ोर की दुश्मन भी था दाना
पर तू भी था बापू बड़ा उस्ताद पुराना
मारा वो कस के दांव कि उल्टी सभी की चाल
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल

जब जब तेरा बिगुल बजा जवान चल पड़े
मजदूर चल पड़े थे और किसान चल पड़े
हिन्दू मुसलमान सिख पठान चल पड़े
कदमों पे तेरे कोटि–कोटि प्राण चल पड़े
फूलों की सेज छोड़ के दौड़े जवाहरलाल
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल

मन में थी अहिंसा की लगन तन में लंगोटी
लाखों में घूमता था लिये सत्य की सोंटी
वैसे तो देखने में थी हस्ती तेरी छोटी
लेकिन तुझे झुकती थी हिमालय की भी चोटी
दुनिया में तू बेजोड़ था इंसान बेमिसाल
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल

जग में कोई जिया है तो बापू तू ही जिया
तूने वतन की राह में सब कुछ लुटा दिया
मांगा न कोई तख्त न तो ताज ही लिया
अमृत दिया सभी को मगर खुद जहर पिया
जिस दिन तेरी चिता जली रोया था महाकाल
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल

आद्यन्त

— धर्मवीर भारती

इस दुनिया के कणकणों में बिखरी मेरी दास्तां
इस दुनिया के पत्थरों पर अंकित मेरा रास्ता
फिर भला क्यों जाना चाहूँगा माझी उस पार मैं !!

माना मैंने उस तरफ हरियाले कोमल फूल हैं
माना मैंने उस तरफ लहरों में बिखरे फूल हैं
माना मैंने इस तरफ बस कंकड़ पत्थर धूल हैं
किन्तु फिर क्या पत्थरों पर सर पटकता ही रहूँ !
खींच कर यदि ला सकूँ उस पार को इस पार मैं !!

पैंरों में भूकम्प मेरी साँसों में तूफान है
स्वर लहरियों में मेरी हँसते प्रलय के गान हैं
मौत ही जब आज मेरी जिन्दगी का मान है
फिर दबा लूँ क्यों न दोनों मुट्ठियों में कूल को
बह चलूँ खुद क्यों न बन जलधार मैं
फिर भला क्यों जाना चाहूँगा माझी उस पार मैं !!

जिन्दगी की आस में लुटती यहाँ है जिन्दगी
जिन्दगी की आस में घुटती यहाँ है जिन्दगी
किन्तु फिर क्या बैठकर आकाश को ताका करूँ
तोड़ कर यदि ला सकूँ आकाश को इक बार मैं
फिर भला क्यों जाना चाहूँगा माझी उस पर मैं !!!

ओ देशवासियो, बैठ न जाओ पत्थर से

– डॉ0 हरिवंशराय 'बच्चन'

ओ देशवासियो, बैठ न जाओ पत्थर से,
ओ देशवासियो, रोओ मत यों निर्झर से,
दरख़्वास्त करें, आओ, कुछ अपने ईश्वर से
वह सुनता है
ग़मज़दों और
रंजीदों की ।

जब सार सरकता–सा लगता जग–जीवन से,
अभिषिक्त करें, आओ, अपने को इस प्रण से –
हम कभी न मिटने देंगे भारत के मन से
दुनिया ऊँचे
आदर्शों की,
उम्मीदों की ।

साधना एक युग–युग अन्तर में ठनी रहे –
यह भूमि बुद्ध–बापू–से सुत की जनी रहे;
प्रार्थना एक, युग–युग पृथ्वी पर बनी रहे
यह जाति
योगियों, सन्तों
और शहीदों की ।

निवेदन

पारस–परस पूरी तरह से एक गैर–व्यावसायिक पत्रिका है । इसका एकमात्र उद्देश्य काव्य के माध्यम से हिन्दी कवियों के पैगाम को जन–जन तक पहुंचाना है । इस पत्रिका में प्रकाशित सभी रचनाओं के साथ रचनाकारों का नाम और उनसे संबंधित उचित जानकारी दी जाती है जिससे रचनाकार को उचित श्रेय मिलता है । इतना ही नहीं, हम प्रत्येक रचना के प्रकाशन से पूर्व संबद्ध रचनाकार से लिखित/मौखिक अनुमति का भी भरसक प्रयास करते हैं । फिर भी यदि किसी रचनाकार/कॉपीराइट धारक को कोई आपत्ति है तो उनसे अनुरोध है कि वह हिन्दी काव्य के प्रचार–प्रसार को ध्यान में रखते हुए, इस पत्रिका के योगदानकर्त्ताओं से हुई भूलवश गलती को क्षमा कर दें। यदि कॉपीराइटधारक को कोई आपत्ति है तो कृपया paarasparas.pathak@gmail.com पर सूचित कर दें ताकि पत्रिका के आगामी अंकों में उनकी रचनाएं प्रकाशित करने से पूर्व लिखित अनुमति सुनिश्चित की जा सके और इस संबंध में आवश्यक पहलुओं को ध्यान में रखा जा सके ।

इस कार्य को प्रसून–प्रतिष्ठान द्वारा जन–जागरुकता और जनहित की दृष्टि से किया जा रहा है । पत्रिका को शुभेच्छुओं तथा प्रसून–प्रतिष्ठान के सदस्यों में निःशुल्क वितरित किया जाता है ।

किस्सा जनतंत्र

– सुदामा पाण्डेय 'धूमिल'

करछुल.....
बटलोही से बतियाती है और चिमटा
तवे से मचलता है
चूल्हा कुछ नहीं बोलता
चुपचाप जलता है और जलता रहता है

औरत.....
गवें गवें उठती है..... गगरी में
हाथ डालती है
फिर एक पोटली खोलती है ।
उसे कठवत में झाड़ती है
लेकिन कठवत का पेट भरता ही नहीं
पतरमुही (पैथन तक नहीं छोड़ती)
सरर फरर बोलती है और बोलती रहती है

बच्चे आँगन में....
आंगड़बांगड़ खेलते हैं
घोड़ा–हाथी खेलते हैं
चोर–साव खेलते हैं
राजा–रानी खेलते हैं और खेलते रहते हैं
चौके में खोई हुई औरत के हाथ
कुछ नहीं देखते
वे केवल रोटी बेलते हैं और बेलते रहते हैं

एक छोटा–सा जोड़–भाग
गश खाती हुई आग के साथ
चलता है और चलता रहता है
बड़कू को एक
छोटकू को आधा
परबती....बालकिशुन आधे में आधा
कुल रोटी छै
और तभी मुँह दुब्बर
दरबे में आता है.... 'खाना तैयार है?'
उसके आगे थाली आती है
कुल रोटी तीन
खाने से पहले मुँह दुब्बर
पेटभर
पानी पीता है और लजाता है
कुल रोटी तीन
पहले उसे थाली खाती है
फिर वह रोटी खाता है

और अब.....
पौने दस बजे हैं .....
कमरे में हर चीज़
एक रटी हुई रोज़मर्रा धुन
दुहराने लगती हैं
वक्त घड़ी से निकल कर
अंगुली पर आ जाता है और जूता
पैरों में, एक दंत टूटी कंघी
बालों में गाने लगती है

दो आँखें दरवाज़ा खोलती हैं
दो बच्चे टा टा कहते हैं
एक फटेहाल क्लफ कालर....
टाँगों में अकड़ भरता है
और खटर पटर एक ढड्ढा साइकिल
लगभग भागते हुए चेहरे के साथ
दफ्तर जाने लगती है
सहसा चौरस्ते पर जली लाल बत्ती जब
एक दर्द हौले से हिरदै को हूल गया
ऐसी क्या हड़बड़ी कि जल्दी में पत्नी को चूमना ...
देखो, फिर भूल गया ।

लाख पुकारो

— अनजान

लाख पुकारो किन्तु रूप पर कोई असर कहाँ होता है –
फिर क्यूं हर दिन सुन्दरता अनजाने पास चली आती है !!

अल्हड़ आँखों का सम्मोहन बरबस प्यासे मन को खींचे
किन्तु तृप्ति मिल सकी उसे कब, खिंचा चला जो इनके पीछे,
रीत अजब विपरीत रूप की, जैसे इक अनबूझ पहेली –
मन में सौ–सौ स्वप्न जगाकर खुद सो जाये अँखियाँ मींचे
अनुनय–विनय–विनम्र निवेदन से प्रस्तर प्रतिमा कब पिघले –
जो जितना प्यासा है छवि उसको उतना ही तरसाती है !!

पल–पल बदल रही छलिया छवि की पसन्द कोई क्या जाने
यह इठलाता रूप भला किस आकर्षण का बन्धन माने
इन्द्रधनुष के सारे रंग बिखरते हैं जिसके आँचल से
वह कब कहाँ रंग क्या बदले, भेद ये कोई क्या पहचाने
कभी भरी बरसातों में भी बिन बरसी बदली–सी लौटे –
और कभी बिन मौसम प्यासे मन पर अमृत बरसाती है !!

इक धुँधली–सी झलक रूप की जनम–जनम की नींद चुराये
इक हलकी–सी हँसी उम्र भर को बेनाम कसक दे जाये
कभी स्वयं जो खेले इन शीतल अंगारों से वह समझे –
फूलों–सी कोमल सुषमा है दीप–शिखा की जलन छुपाये
जितना हो सम्मान मान छविका उतना बढ़ता जाता है –
और कहीं ठुकराई जाकर भी सर्वस्व लुटा आती है !!

जीवन के तपते मरुथल में, सुन्दरता बस इक मृगजल है
जिस पर मोहित भोली आँखें जिसको देख हृदय चंचल है
रूप और कुछ नहीं तृषित मन की अतृप्ति की परछाईं है
किन्तु सत्य यह भी है इसके पीछे सारा जग पागल है
स्वयं समर्पित हो जाने की साध जगा दे सुन्दरता में–
ऐसा आकर्षण हो जिसमें प्यास उसी की बुझ पाती है !!

(हिन्दी फिल्मों के जाने माने गीतकार श्री अनजान का मूल नाम लालजी पाण्डेय था। इनका जन्म उत्तर प्रदेश के वाराणसी शहर में हुआ था। श्री अनजान ने कई हिन्दी फिल्मों के लिए गीत लिखें हैं और अपने गीतों से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध किया है।)

माँ है तेरे रूप अनेक

– डॉ0 अनिल कुमार पाठक

मां ममता का सागर है तू
मां करुणा का आगर है तू
नित पल छलके प्रतिपल ढरके
अमृतमयी वह गागर है तू
दया, प्रेम, अनुराग तुम्ही से
तुम सा नहीं है कोई नेक
मां, हैं तेरे रूप अनेक

समता का पर्याय तुम्ही हो
वंचित, पीड़ित का न्याय तुम्ही हो
आंचल तेरा नभ से विस्तृत
आत्म तुम्ही मां, काय तुम्ही हो
समदर्शी, निर्मल, निश्छल तुम
इस सृष्टि की तू ही टेक
मां, हैं तेरे रूप अनेक

अतुलनीय, अद्वितीय, अगोचर
तू ही तो मां अमर धरा पर
कलुष–तमस से दूर ज्योतिमय
तू विजयी है मरण जरा पर
पुत्र कुपुत्र हुआ पर माता
ममतामय नित तू ही एक
मां हैं तेरे रूप अनेक

एक मृतात्मा की वसीयत

– लक्ष्मीकांत वर्मा

ओ माँ !
यह सब तुम्हारे स्नेह के आधार पर जीते हैं
कड्डुआहट, तल्खी, तीखी सारी बेबसियाँ ।
महज इस खाल में भूसा भर कर
आँखों में कौड़ियाँ लगा
कानों में सीपियाँ लगा
केवल इसीलिए मुझे तुम्हारे पास खड़ा करते हैं
ताकि तुम सड़ी, सूखी, प्राणहीन खलरी चाटो
अपना अमित स्नेह ले
अपनी बेबस आँखों से मुझे ताको
और भर दो
इन सारे के सारे स्नेह के पिपासे मुरदों के स्नेह–पात्र
इसलिये कि तुम माता हो
शुचि स्नेहयुक्त स्निग्ध पयमयी, रसपूर्ण वात्सल्य की प्रतिमा हो
ओ माँ–
यह सब तुम्हारे स्नेह पर जी लेंगे
क्योंकि ये महज जीते हैं
ये रहते नहीं !
भर दो
इस त्वचा की मृतात्मा की सूखी ठाठर में
वह घास–पात, कूड़ा–कबाड़ सब कुछ भर दो
लगा दो इन नकली कौड़ियों की आँखें
मेरे माथे के नीचे के गोलकों में लगा दो
कानों में सीपियाँ
खपाचियाँ पैरों में
तारकोल, नेप्थलीन की गोलियाँ भर दो
मेरे इस हृदयहीन, धमनीहीन, स्नायुहीन काया में

सभी कुछ भर दो
ताकि मैं रस–स्निग्ध पयमयी माता के निकट
अपनी चेतनाहीन पूँछ को एक स्थिति में उठा
उसके वात्सल्य को, हृदय को, आकर्षण को, चेतना को
सबको उभार दूँ
और तुम इस मुरदे के उपजाये स्नेह को निचोड़
जीवित रहो
जिन्दा रहो !
ओ माँ !
सच मानो, मुझे दीमक नहीं छुयेंगे
नहीं पास आयेगी चींटी, चूहा –
नहीं कुतरेगा बहेलिये का कुत्ता मुझे
नहीं देखेगा कोई भी हिंसक
कयोंकि मैं मरकर जीवित का अभिनय हूँ
केवल एक स्थिति हूँ
जिस पर रचना की देहली माथा टेक
हार मान सो जाती है
इसीलिए दो
ओ पयमयी, रस–स्निग्ध ज्वारों की स्रोत
इन सबको दो मेरा वह स्नेह।

मौत तो केवल बहाना था
जिन्दगी को सिर छुपाना था
एक घर से अब सैलानी चली
और नूतन घर बनाना था
विनय कुमार जैन

महाशक्ति

– इंदीवर

मीत भले बैरी बन जायें, भले न मुझको प्यार मिले ।
हर ग़म में जी सकता हूँ माँ, तेरा अगर दुलार मिले !!

तेरा अगर दुलार मिले तो, हर ग़म में जी सकता हूँ,
मैं शंकर की तरह ज़हर का, हर आँसू पी सकता हूँ !
तू आंचल से आँसू पोंछे फिर ग़म क्या कर सकता है ?
स्नेहमयी हो नज़र, जख्म कैसा भी हो भर सकता है !
मन को मेरे, तेरी ममताओं का यदि आधार मिले ।
हर ग़म में जी सकता हूँ माँ, तेरा अगर दुलार मिले !!

पीठ ठोक दे तू मेरी, मैं मुमकिन नहीं पिछड़ जाऊँ,
दुनिया तो दुनिया ही है, मैं किस्मत से भी लड़ जाऊँ,
मुझे जहां की क्या परवा, मैं दो जहान भी ठुकरा दूँ,
सरपर तेरा हाथ रहे तो, आसमान भी ठुकरा दूँ,
और चाहिये क्या, यदि तेरे चरणों का संसार मिले ?
हर ग़म में जी सकता हूँ माँ, तेरा अगर दुलार मिले !!

हो तेरी आशीष अगर, हर शाप मुझे वरदान बने,
पत्थर को भी छू दूँ मैं, तो पत्थर भी भगवान बने ।
गीत बदल जाये गीता में, थक जाये संसार जहाँ !
क़लम वहाँ पर चले, टूटकर रह जाये तलवार जहाँ !
हर नैया को माझी, ओ' हर माझी को पतवार मिले !
हर ग़म में जी सकता हूँ माँ, तेरा अगर दुलार मिले !!

(ख्यातिप्राप्त गीतकार श्री इंदीवर का जन्म झांसी जिला के बरूआसागर ग्राम मे हुआ था। श्री इंदीवर ने अपनी जादुई लेखनी से ऐसे कई गीतों की रचना की है जिन्हें हिन्दी फिल्मों की आत्मा कहा जाता है।)

माँ

– मीनाक्षी दास

धरती का तुझमें धैर्य समाया
विस्तार गगन का तुमने पाया
सागर सा गाम्भीर्य लिये
तुम माँ मेरी, तुम सबकी माँ

तरुवर का सा निर्लिप्त भाव
निश्छल मन तेरा निर्झर सा
हिमगिरि सा ऊँचा पुण्य तेरा
माँ, मन को शीतलता देता

ममता की यह मूरत मेरी
पीड़ा का जिसने गरल पिया
संतापों में तप, कंचन बन
हमको मन की दृढ़ता देती

तुम करूणानिधि निर्झरिणी सी
स्नेह सलिल से सिंचित करती
जीवन मग की क्यारी–क्यारी
तुम माँ जग से न्यारी प्यारी

तुमको प्रणाम, शत्–शत् प्रणाम
तुम माँ मेरी, इसकी उसकी
तुम माँ की एक अपूर्व छवि
तुम धन्य धन्य तुम सबकी माँ

बेसन की सोंधी रोटी

– निदा फ़ाज़ली

बेसन की सोंधी रोटी पर
खट्टी चटनी जैसी माँ
याद आती है चौका–बासन
चिमटा, फुकनी जैसी माँ।

बान की खुर्रीखाट के ऊपर
हर आहट पर कान धरे
आधी सोयी, आधी जागी
थकी दुपहरी जैसी माँ।

चिड़ियों की चहकार में गूंजे
राधा–मोहन अली–अली
मुर्गे की आवाज से खुलती
घर की कुंडी जैसी माँ।

बीवी, बेटी, बहन, पड़ोसन
थोड़ी–थोड़ी–सी सबमें
दिल भर एक रस्सी के ऊपर
चलती नटनी जैसी माँ।

बाँट के अपना चेहरा, माथा;
आँखें जाने कहाँ गई?
फटे–पुराने एक अलबम में
चंचल लड़की जैसी माँ।

चर्खे के हर तार तार में तुमने प्यार भरा जनता का
सत्ताओं से जूझ निरन्तर पथ दिखलाया ममता का
सत्य अहिंसा के शस्त्रों से चमत्कार ऐसा कर पाये
इस भारत को बापू तुमने बना दिया मंदिर ममता का

हनुमन्त नायडू

अनाथ की मां

– शिवकुमार बिलग्रामी

अनाथ की मां,
एक सपना होती है,
और उस सपने में मां,
.... हमेशा रोती है ।

जब भी उसका लाल,
भूखा, प्यासा, बेहाल
सड़क पर भटकता है
या फुटपाथ पर सोता है,
सपने वाली मां का,
बुरा हाल होता है ।

सर्दियों की रात में,
सिकुड़कर गठरी बने,
अपने लाल के बालों में,
उंगलियां फंसाकर,
मां उसे सहलाती है,

'मां रोज–रोज सपनों में आती है'

इंसानियत के दुश्मन,
जब भी उसके लाल को,
बात–बेबात सताते हैं,
अपने स्वार्थ के लिए,
कभी उठाईगीर
तो कभी चोर बताते हैं
....और अनियंत्रित हो,
लात–घूंसा बरसाते हैं,
तब अक्सर सपनों वाली मां,
अपने बेहोश लाल के पास आती है
हाथ का सहारा दे,
उसको उठाती है,

'चोटों को सहलाती है'

मां की मखमली
जादुई उंगलियों के स्पर्श से
अनाथ ज्यों–ज्यों सुकून पाता है
उसके दिल में
यही खयाल आता है
कि यदि मां ....
सपनों में भी न आती
तब तो मेरी–
दुनिया ही उजड़ जाती...
दुनिया ही उजड़ जाती...
दुनिया ही उजड़ जाती ....

जिस ओर गया, उस ओर मिली, मुझको मुस्कानों की कलियां
मैं इसीलिए हँसता–हँसता तय करता जीवन की गलियाँ
वैसे आंसू भी बिकते हैं इस दुनिया की बाजारों में
लेकिन हैं धन्य वही मानव, जो बाँट रहे हैं पग–पग खुशियाँ

रामरिख 'मनहर'

(1)

आओ फिर से दिया जलाएं

– अटल बिहारी वाजपेयी

आओ फिर से दिया जलाएं
भरी दुपहरी में अंधियारा
सूरज परछाई से हारा
अंतरतम का नेह निचोड़ें–
बुझी हुई बाती सुलगाएँ
आओ फिर से दिया जलाएं

हम पड़ाव को समझे मंजिल
लक्ष्य हुआ आंखों से ओझल
वर्तमान के मोहजाल में–
आने वाला कल न भुलाएँ
आओ फिर से दिया जलाएं

आहुति बाकी यज्ञ अधूरा
अपनों के विघ्नों ने घेरा
अंतिम जय का वज्र बनाने –
नव दधीचि हड्डियां गलाएँ
आओ फिर से दिया जलाएँ

(2)

क्षमा याचना

क्षमा करो बापू ! तुम हमको,
वचन भंग के हम अपराधी
राज़घाट को किया अपावन,
मंज़िल भूले, यात्रा आधी

जयप्रकाश जी! रखो भरोसा,
टूटे सपनों को जोड़ेंगे
चिताभस्म की चिंगारी से,
अन्धकार के गढ़ तोड़ेंगे

संन्यासी हो गया सवेरा

– बी.एल. गौड़

संन्यासी हो गया सवेरा, जोगन पूरी शाम हुई
छली रात झूठे सपनों ने, यूँही उमर तमाम हुई ।

मन ने नित्य उजाले देखे
रंगो की मधुशाला में
कर लें दूर अँधेरे हम भी
सोचा बार–बार मन में

तन ने करे निहोरे मन के, मत बुन जाल व्यर्थ सपनों के
मयखाने के बाहर तन की, हर कोशिश नाक़ाम हुई ।

मटकी दूध कलारिन लेकर
मयखाने से जब गुज़री
होश में आये पीने वाले
मन में एक कसक उभरी

काश! बनी होती ये साक़ी, मदिरा हाथ छुई होती
पीने वालों की नज़रों में, बेचारी बदनाम हुई ।

यों तो मिली हजारों नज़रें
पर न कहीं वह नज़र मिली
चाहा द्वार तुम्हारे पहुँचूँ
पर न कहीं वह डगर मिली

तुम कहते याद न हम आये, हम कहते भूल कहाँ पाये
सारी उमर लिखे ख़त इतने, स्याही क़लम तमाम हुई ।

सोचा अब अन्तिम पड़ाव पर
हम भी थोड़ी सी पी लें
मन में सुधियाँ जाम हाथ में
अन्त समय जी भर जी लें

प्याला अभी अधर तक आया, साक़ी तभी संदेशा लाया
जाम आख़िरी जल्दी पी लो, देखो दिशा ललाम हुई ।

पत्राचार का पता:
बी 159, योजना विहार, दिल्ली–92

औरतें जब हंसती हैं

– सौमित्र सक्सेना (अमेरिका से)

औरतें जब हंसती हैं
तो रोटी फूल के उतर आती है
घाट पर कपड़े और ज़ोर से पिटने लगते हैं
लियोनार्दो एक मोनालिसा फिर से खींच देता है और
घर–गांव–शहर में
दिन निकल आता है ।

औरतें जब हंसती हैं
तो भैया दुल्हन लाया होता है ब्याह कर
बाप के मरने पर घर जाने को मिलता है
बेटी की डोली रवाना हुई होती है और
पति ने कुछ यादकर फिर प्यार से बोला होता है ।

औरतें जब हंसती हैं
तो कैसे माथे का पसीना
गरदन से रिसरिस के गिरता है
कैसे बच्चे की पेशाब से बिस्तर भीगा होता है
कैसे बालटी भरके गाय दूध देती है और
दुपहरी में सही वक्त गुड़िया स्कूल से वापस आती है ।

औरतें जब हंसती हैं
सब साथ–साथ हंसती हैं
अमेजन के घाटों पर शिकार करती औरत
मेडीटेरियन के समूहद्वीपों में मछली सुखाती औरत
बांग्लादेश के खेतों में
धान से हरी औरत और
कानपुर के स्टेशन पर
नटनी की नथनी में
फंसी सी, छिदी सी

झीने दांतों से
ठठाती औरत
जैसे परछाइयां रंग बदल लेती हैं
चीजों की नसल से
फिर भी छाया ही रहती हैं होकर
अंधेरी घोर
नकाबों के दायरों से
परदों की जालियों से
सभी झीने कपड़ों से
हंसी छन छन के आती है
सूरज महकाता है आंगन का सहर
चांद छू जाता है खिड़कियों से रात

सोचता हूं
औरतें क्यों हंसती हैं
जब
उनके हर बार हंसने में
मैना के पर टूटते हैं
पिंजरे के लोहे से लड़कर
जब उनके खिलखिलाने से कोई
दूसरी रोने लगती है औरत
जब मर्दों के उजालों में उन्हें
रोज बुझ जाना पड़ता है
जब
जब कि
हंसना उनका काम नहीं है ।

(सौमित्र सक्सेना अमरीका में शिकागो स्थित इलिनॉयड्स यूनिवर्सिटी में पी.एच.डी. स्कॉलर हैं)

रामभरोसे

–पूर्णिमा वर्मन (संयुक्त अरब अमीरात से)

अमन चैन के भरम पल रहे –
रामभरोसे !
कैसे–कैसे शहर जल रहे –
रामभरोसे !

जैसा चाहा बोया–काटा
दुनिया को मर्ज़ी से बाँटा
इसको डाँटा उसको चाँटा
रामनाम की ओढ़ चदरिया
कैसे आदमज़ात छल रहे –
रामभरोसे !

दया धर्म नीलाम हो रहे
नफ़रत के ऐलान बो रहे
आँसू–आँसू गाल रो रहे
बारूदों के ढेर ढो रहे
जप कर माला विश्वशांति की
फिर भी जग के काम चल रहे –
रामभरोसे !

भाड़ में जाए रोटी दाना
अपनी डफली अपना गाना
लाख मुखौटा चढ़े भीड़ में
चेहरा लेकिन है पहचाना
जानबूझ कर क्यों प्रपंच में
प्रजातंत्र के हाथ जल रहे –
रामभरोसे !

(पूर्णिमा वर्मन संयुक्त अरब अमीरात के शारजाह शहर में निवास करती हैं। वे हिन्दी कविताओं की एक इंटरनेट पत्रिका – अनुभूति की संपादक हैं । इन्होंने हिन्दी साहित्य को इंटरनेट पर उपलब्ध कराकर हिन्दी साहित्य में अपना महती योगदान दिया है)

कौए ने कोयल से पूछा

— प्राण शर्मा

कौए ने कोयल से पूछा–हम दोनों तन से काले हैं
फिर जग तुझ पर क्यों मरता है मुझसे नफरत क्यों करता है
कोयल बोली–सुन ऐ कौए, बेहद शोर मचाता है तू
अपनी बेसुर काँय–काँय से कान सभी के खाता है तू
मैं मीठे सुर में गाती हूँ हर इक का मन बहलाती हूँ
इसीलिए जग को भाती हूँ जग वालों का यश पाती हूँ

शेर हिरन से बोला प्यारे हम दोनों वन में रहते हैं
फिर जग तुझ पर क्यों मरता है मुझ से नफरत करता है
मृग बोला–ए वन के राजा ! तू दहशत को फैलाता है
जो तेरे आगे आता है तू झट उसको खा जाता है
मस्त कुलांचे मैं भरता हूँ बच्चों को भी बहलाता हूँ
इसीलिए जग को भाता हूँ जग वालों का यश पाता हूँ

चूहे ने कुत्ते से पूछा–हम इक घर में ही रहते हैं
फिर जग तुझ पर क्यों मरता है मुझ से नफरत क्यों करता है
कुत्ता बोला–सुन रे चूहे तुझमें सदव्यवहार नहीं है
मैं घर का पहरा देता हूँ चोरों से लोहा लेता हूँ
इसीलिए जग को भाता हूँ जग वालों का यश पाता हूँ

मच्छर बोला परवाने से हम दोनों भाई जैसे हैं
फिर जग तुझ पर क्यों मरता है मुझ से नफरत क्यों करता है
परवाना बोला मच्छर से तू क्या जाने त्याग की बातें
रातों में तू सोये हुओं पर करता है छिप–छिप कर घातें
मैं बलिदान किया करता हूँ जीवन यूँ ही जिया करता हूँ
इसीलिए जग को भाता हूँ जग वालों का यश पाता हूँ

मगरमच्छ बोला सीपी से–हम दोनों सागर वासी हैं
फिर जग तुझ पर क्यों मरता है मुझ से नफरत क्यों करता है
सीपी बोली–जल के राजा तुझ में कोई शर्म नहीं है
हर इक जीव निगलता है तू तेरा कोई धर्म नहीं है
मैं जग को मोती देती हूँ बदले में कब कुछ लेती हूँ
इसीलिए जग को भाती हूँ जग वालों का यश पाती हूँ

आंधी ने पुरवा से पूछा–हम दोनों बहनों जैसी हैं
फिर जग तुझ पर क्यों मरता है मुझ से नफरत क्यों करता है
पुरवा बोली–सुन री आंधी तू गुस्से में ही रहती है
कैसे हो नुकसान सभी का तू इस मंशा से बहती है
मैं मर्यादा में रहती हूँ हर इक को सुख पहुंचाती हूँ
इसीलिए जग को भाती हूँ जग वालों का यश पाती हूँ

पत्राचार का पता:
3,Crackston Close
Coventry, CV2, 5EB, UK
e-mail: sharmapran4@gmail.com

कविता में कितने क....??

शमशाद इलाही अंसारी

कविता में हैं कई क
कब, कहाँ, किससे, कैसे और क्यों
वि से हुआ विन्यास और व्याख्याता है बहु आयामी
तादात्मय, तारतम्यता,
तात्पर्य और ताल्लुक
मैं, किस विषय को क्यों
कैसे, किससे जोड़ कर
कब लिखूँगा.. यह है मूल–प्रयोजन कविता का ।
चुने गए विषय की
व्याख्या कैसे करुँगा ?

या सीधे, हमलावर की भाँति
व्याख्या करते हुए
अपने, वाक्यों का विन्यास
संतुलित करुँगा...??
चुने गए विषय
और बिंब अथवा
उसके कलात्मक शिल्प को
आपस में कैसे ठीक बैठाया जाए
उसका तादात्मय ठीक हो
विचार–प्रवाह की तारतम्यता दुरुस्त हो
और, उससे महत्वपूर्ण सवाल है
जिस विषय को चुना है
उससे मेरा निजी क्या ताल्लुक है
उससे क्या वास्ता है
सापेक्ष अथवा निरपेक्षता में
कितनी गर्मी है इस संबंध में ?

जितनी आँच होगी इस रिश्ते में
उतनी ही चाश्नी बेहतर होगी
जब, तैयार होगी
वही होगी, कविता...
दुर्भाग्य से, कविता को
लिखने वाले यह नहीं जानते !

पत्राचार का पता:
126, Blackfoot Trail (Basement)
Postal Code, L5R2G7
Misisagon, Canada
e-mail: shamshad66@hotmail.com

आस्था का उजाला

– पुष्पिता

प्रवासी भारतवंशियों ने
सात–समुद्र पार
सूरीनाम की धरती पर रचे हैं –
संस्कृति–मंदिर
कृष्ण–राधा मंदिर
गायत्री मंदिर
विष्णु मंदिर
दुर्गा मंदिर
शिव मंदिर
आर्य–समाजियों की यज्ञशालाएं,
भीतर जिनके भगवान.. देवी. . देवता
रामायण, पुराण और गीत ।

सूर्य
मंदिर के शिखरों से पहुँचता है –
आस्था बन कर
पाषाण प्रतिमा में
और सौंपता है –
इन पावन मंदिरों की
प्राचीन तेजस्वी अखंड ज्योति
वह सरनामी उपासकों की आंखों में
उतरता है साधना की शक्ति बनकर

सूर्य
सरनामी मस्जिदों की मीनारों से
उतर जाता है –
हर पहर की अजान में
अजान से कुरान में

कुरान से लफ़्ज़ में
इबारत से इंसान में
इंसानियत बनकर

सूर्य
सरनामी गिरजाघरों के भीतर पहुंचता है –
प्रार्थना के शब्दों में
प्रकाश बनकर
घड़ी के घंटों में
सुनाई देता है –
उजास का स्वर ढलकर

सूर्य
सरनामी भक्तजनों के
नन्हें घरौंदों में
आस्था का प्रतिरूप है –
बिना भेदभाव के
मानवता के समर्थन में / निःशब्द
मौन ही उसका स्वर
आस्था ही उसकी वाणी
भक्ति ही प्रेरणा का पावन प्रसाद !

(पुष्पिता जी भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र, भारतीय राजदूतावास, पारामारीबो, सूरीनाम में कार्यरत हैं)

तू खुद अपने पाँवों को हिम्मत का बल दे,
उठा अपना सर और आगे को चल दे
कहाँ पूछता फिर रहा अपनी 'ज्योतिष'
ग्रहों का है डर, तो ग्रहों को बदल दे

पं0 भरत व्यास

रिश्तों की खातिर

– भावना कुँअर (आस्ट्रेलिया से)

बहुत दुखी हूँ मैं
इन रिश्ते नातों से
जो हर बार ही दे जाते हैं –
असहनीय दुःख
रिसती हुई पीड़ा,
टूटते हुए सपने,
अनवरत बहते अश्क
और मैंने –
मैंने खुद को मिटाया है
इन रिश्तों की खातिर ।
पर इन्होंने सिर्फ–
कुचला है मेरी भावनाओं को,
रौंद डाला है मेरे अस्तित्व को,
छलनी कर डाला है मेरे दिल को ।
लेकिन ये मेरा दिल है कोई पत्थर नही –
अनेक भावनाओं से भरा दिल
इसमें प्यार का झरना बहता है,
सबके दुःखों से निरन्तर रोता है,
बिलखता है, सिसकता है
और उनको खुशी मिले
हरदम यही दुआ करता है ।
पर उनका दिल, दिल नहीं
पत्थरों का एक शहर है
जिसमें कोई भावनाएं नहीं
बस वो तो तटस्थ खड़ा है
पर्वत की तरह
उनके दामन को बहारों से भर दो
तो भी उनको कोई फर्क नहीं पड़ता ।
मैं हर बार हार जाती हूँ इन रिश्तों से
पर, फिर भी हताश नहीं होती
फिर लग जाती हूँ इनको निभाने में
इस उम्मीद से कि कभी तो सवेरा होगा
कभी तो ये पत्थरों का शहर
भावनाओं का शहर होगा
जिसमें मेरे लिए भी
अदना सा ही सही
पर इक मकां होगा ।

email: bhawnak2002@yahoo.co.in

हौले से कुछ कह जाना

– श्रद्धा जैन (सिंगापुर से)

है याद तुम्हारा कानों में, हौले से कुछ कह जाना
वादों से कैसे सीखें, इस भोले दिल को बहलाना

बहुत दिनों के बाद तुम्हें फिर सपनों में पाया है
तकिये को फिर हमने सीने से आज लगाया है
बहुत प्यार की बातें है, जाने कितनी मीठी यादें है
तुम इस भोली लड़की को, सपने से नहीं जगाना
है याद तुम्हारा कानों में, हौले से कुछ कह जाना
वादों से कैसे सीखें, इस भोले दिल को बहलाना

सारी–सारी रतियाँ बीतीं, तारों से बातें करते
थोड़ा सा उम्मीद में जीते, थोड़ा–थोड़ा हम मरते
ना आते खुद मिलने को ना कोई खबरिया आती
ख्वाबों में मिलकर तुमसे, सीख लिया है तुमको पाना
है याद तुम्हारा हौले से, कानों में कुछ कह जाना
वादों से कैसे सीखें, इस भोले दिल को बहलाना

दुःखों के घूँट पी–पी कर
खुशी के फूल बिखराओ
सभी मुश्किल का हल होगा
मगर तुम आत्म–बल लाओ
बिजलीरानी चौधरी

शब्द नहीं कह पाते

–ऋतु पल्लवी

कोई बिम्ब, कोई प्रतीक, कोई उपमान
नहीं समझ पाते ये भाव अनाम

जैसे पूर्ण विराम के बाद शून्य–शून्य–शून्य
और पाठक रुक कर कुछ सोचता है
पर लेखक लिखता नहीं
लेखक भी कहता है पर चुक जाते हैं शब्द
समझने के लिए रीता अयाचित अंतराल
शब्दों की कोई इयत्ता नहीं, कोई सत्ता नहीं ।

असीम आकाश का निस्सीम खुलापन
अन्जानी राहों में भटकते पंछी
अचीन्ही दिशाएँ खोजती हवाएँ
बादलों के बनते–बिगड़ते झुरमुट
और इन सबको देखती आँखें
जो महसूसती हैं–बिलकुल निजी क्षण वह
पर कौन, कहाँ, किसे, कितना कह पाता है !

अकेलापन, अलगाववाद, कुंठा–संत्रास
आज के समय की पहचान हैं ये, अवांछित शब्द
संभवतः आयातित
जिस प्रकार भारी भरकम विज्ञान के आने पर
खाली हो जाता है साहित्य का बाजार
उसी प्रकार इन शब्दों ने खाली कर दिए,
शब्दों के सभी अर्थ
जैसे कभी बोलते–बोलते स्वयं रुक जाते हैं हम
बात की निरर्थकता समझकर
बहुत कुछ समेटते–समेटते
अटक जाते हैं बीच में ही कहीं ।

संवेदनाएँ मरी नहीं है
(मर जाएँगी तो हम जिंदा कहाँ रहेंगे?)
आज भी वह फूटकर रोता है,
किसी विस्मृत होती सोच पर, रोते–रोते हँस देता है
पर मन के इस ज्वार को,
उच्छलित होती भावनाओं को, अनियंत्रित वेदनाओं को
आवाज़ की पुकार नहीं मिलती ।

धीरे–धीरे खो जाता है सब
पुकार, ज्वार, प्यार
और शब्दों से लेकर आवाज़ तक भटकते
संप्रेषण का हर आधार,
रीते–कोरे से होकर जुट जाते हैं हम
यंत्रचालित इस संसार में अनिवार ।

e-mail: ritup16@yahoo.com

तुम समझते हो जगत में दुःख भरा है,
विश्व में कोई नहीं कोना हरा है
मैं ऊषा से नित नई सुनता प्रभाती
सूर्य कब काली घटाओं से डरा है

सरस्वती कुमार 'दीपक'

क़साईगिरी

–वर्तिका नन्दा

तुम और हम एक ही काम करते हैं
तुम सामान की हाँक लगाते हो
हम खबर की ।
तुम पुरानी बासी सब्ज़ी को नया बताकर
रुपए वसूलते हो
हम बेकार को 'खास' बताकर टी.आर.पी. बटोरते हैं
लेकिन तुममें और हममें कुछ फ़र्क भी है ।

तुम्हारी रेहड़ी से खरीदी बासी सब्ज़ी
कुकर पर चढ़कर जब बाहर आती है
तो किसी की ज़िंदगी में बड़ा तूफान नहीं आता ।

तुम जब बाज़ार में चलते हो
तो खुद को अदना–सा दुकानदार समझते हो
तुम सोचते हो कि
रेहड़ी हो या हट्टी
तुम हो जनता ही
बस तुम्हारे पास एक दुकानदारी है
और औरों के पास सामान ख़रीदने की कुव्वत ।

तुम हमारी तरह फूल कर नहीं चलते
तुम्हें नहीं गुमान कि
तुम्हारी दुकान से ही मनमोहन सिंह या आडवाणी के घर
सब्ज़ी जाती है
लेकिन हमें गुमान है कि
हमारी वजह से ही चलती है
जनसत्ता और राजसत्ता ।

हम मानते हैं
हम सबसे अलहदा हैं
खास और विशिष्ट हैं ।

(वर्तिका नन्दा मीडिया जगत की एक जानी–मानी हस्ती हैं । आप पेशे से पत्रकार हैं । आप कवितालेखन भी करती हैं।)

e-mail: vartikananda@yahoo.com

बिटिया को सीख

—पूनम कुमारी

पढ़ री बिटिया पढ़
आगे तू बढ़
मंजिल है ऊंची
हिम्मत कर चढ़ ।

खेल री बिटिया खेल
सबसे कर मेल
बन हृष्ट–पुष्ट
हार–जीत झेल ।

बोल री बिटिया बोल
कानों में रस घोल
बंद होंठ तू खोल
तोल–मोल के बोल ।

खा री बिटिया खा
जी भर के खा
रहना अब न भूखी
भैया सी खा,

लड़ री बिटिया लड़
न्याय की खातिर लड़
अब जल कर न मर
बन जा वीर निडर

मर–मर कर जीना
घुट–घुट आंसू पीना
ये सब अब छोड़
पापी का माथा फोड़ ।

बेटी होना पाप नहीं
नारी जीवन शाप नहीं
बेटा–बेटी में भेद नहीं
ले पंख, नाप आकाश, मही ।

तू ही है लक्ष्मी, काली, दुर्गा और सरस्वती
घुट–घुट कर मरना तेरी नियति नहीं
कर विकास के पथ पर होड़
तोड़, रूढ़ियों को तोड़ .....

पत्राचार का पताः
फ्लैट नं0 401, ऋषभ टावर
लाइन टैंक रोड, रांची, झारखण्ड

दक्ष गृहिणी

—आकांक्षा पारे

गुस्सा जब उबलने लगता है दिमाग में
प्रेशर कुकर चढ़ा देती हूँ गैस पर
भाप निकलने लगती है जब
एक तेज आवाज़ के साथ
खुद–ब–खुद शांत हो जाता है दिमाग
पलट कर जवाब देने की इच्छा पर
पीसने लगती हूँ एकदम लाल मिर्च
पत्थर पर और रगड़ कर बना देती हूँ
स्वादिष्ट चटनी !

जब कभी मन किया मैं भी मार सकूँ
किसी को
तब
धोती हूँ तौलिया, गिलाफ़ और मोटे भारी परदे
जो धुल सकते थे आसानी से वॉशिंग मशीन में
मेरे मुक्के पड़ते हैं उन पर
और वे हो जाते हैं
उजले, शफ्फ़ाक सफ़ेद

बहुत बार मैंने पूरे बगीचे की मिट्टी को
कर दिया है खुरपी से उलट–पुलट
गुड़ाई के नाम पर
जब भी मचा है घमासान मन में

सूती कपड़ों पर पानी छिड़क कर
जब करती हूं इस्त्री
तब पानी उड़ता है भाप बन कर
जैसे उड़ रही हो मेरी ही नाराज़गी

किसी जली हुई कड़ाही को रगड़ कर
घिसती रहती हूँ लगातार
चमका देती हूँ
और लगता है बच्चों को दे दिए हैं मैंने इतने ही उजले संस्कार

घर की झाड़–बुहारी में
पता नहीं कब मैं बुहार देती हूँ अपना भी वजूद
मेरे परिवार में, रिश्तेदारों में, पड़ोस में
जहाँ भी चाहें पूछ लीजिए
सभी मुझे कहते हैं
दक्ष गृहिणी !

पत्राचार का पता:
ए बी–6, सफदरजंग एनक्लेव
नई दिल्ली

यों तो अपने तन में बहते.....

–मीरा शलभ

यों अपने तन में बहते, एक रक्त के धारे हैं
फिर भी खिंचे–खिंचे रहते हैं, कैसे भाईचारे हैं ।

सम्बन्धों के प्रेम नगर को, हाय कैसी दाह लगी है
जैसे किसी मंथरा दासी की, रघुकुल को आह लगी है
ना जाने किन आँखों से, बरसे डाह के अंगारे हैं
यों तो अपने तन में बहते, एक रक्त के धारे हैं ।

मीठे थे संवाद जहाँ अब पसर गया क्यों मौन वहाँ
दृष्टि अपरिचित–सी पूछे है, भाई तू है कौन यहाँ
अब स्नेहिल संबंध हुये यों, ज्यों लकवा के मारे हैं
यों तो अपने तन में बहते, एक रक्त के धारे हैं ।

अपने–अपने मन में हमने, बसा लिया आख़िर क्यों मैं
अपने मैं की हम पूजा करते, केवल अपनी करते जै
विजय–घोष की लिये पताका, देखो फिर भी हारे हैं
यों तो अपने तन में बहते, एक रक्त के धारे हैं ।

पत्राचार का पताः
243, सेक्टर–1,
चिरंजीव विहार
गाजियाबाद

दर्द अपना सा और का माने
जान अपनी सी और की जाने
आदमियत का यह तकाज़ा है –
आदमी आदमी को पहिचाने

किशोरी रमण टण्डन

आतंक

–पीयूष पाण्डेय

आतंक–एक

मैं कम्यूनिस्ट नहीं हूं
मैंने नहीं पढ़ा मार्क्स को,
काफ्का का नाम नहीं सुना, और
लेनिन–स्टालिन–माउत्से तुंग को देखा है
सिर्फ इतिहास की पुस्तकों में
मैं सोशलिस्ट भी नहीं हूं
लोहिया–जेपी से मेरा कभी कोई वास्ता नहीं रहा
किताबों में भी नहीं
हिन्दू हूं, किन्तु
हिन्दूवादी क्या बला है ?
नहीं जानता मैं
चंद मित्र मुस्लिम जरुर हैं मेरे
लेकिन, उनके जरिए कभी वाकिफ नहीं हुआ कट्टरपंथ से मैं
दरअसल,
मैं न वाद जानता हूं, न वादी
न क्रियावादी हूं, न प्रतिक्रियावादी
मैं तो बस वही हूं
जो, कुछ साल पहले
21 सितंबर को
करोल बाग के गफ्फार मार्केट में मौजूद था...
ग्रेटर कैलाश के एम ब्लॉक मार्केट में मौजूद था...
कनॉट प्लेस के गोपालदास बिल्डिंग के पास मौजूद था...
फिर,
28 सितंबर को
महरौली के मार्केट में भी मौजूद था
हाल में,
13 जुलाई को मुंबई में भी था...
एक बेबस, लाचार, आम आदमी...

आतंक–दो

'एक चीथड़ा सुख'
निर्मल वर्मा ने लिखी थी शायद
लेकिन, 'एक चीथड़ा दुख'
क्यों नहीं लिखता कोई ?
जगह–जगह तो बिखरे पड़े हैं ये चीथड़े
मैंने देखे हैं
हाल में, कई बार
इन चीथड़ों के पास जाने के बाद
आंखों की पुतलियां स्थिर होने लगेंगी
नाक बंद हो जाएगी,
दिमाग की नसें फट जाएंगी
क्योंकि

ये चीथड़े बेहद 'बदबूदार' हैं
इस कदर...
कि सफेद कागज पर हर्फ की शक्ल में भी
बदबू देंगे
गंदगी सहने की शक्ति कहां है हमारे पास ?

आतंक–तीन
मेरी ज़िंदगी का
सबसे खूबसूरत स्वप्न
मेरी मौत है
अन्य स्वप्न शायद पूर्ण न हों
इसके पूर्ण होने की संभावना शत–प्रतिशत है
किंतु, भयभीत हूं,
ये स्वप्न किसी चौराहे, किसी मंदिर, किसी ट्रेन में
धमाकों और सिसकियों के बीच हुआ पूरा
तो क्या मिल पाएगी शांति ?

आतंक–चार
ये धुआं, मांस के लोथड़े
कटे हाथ, टेड़े–मेढ़े भाव
चीखती औरतें
सिसकते बच्चे
पुलिस का सायरन,
और लगातार बजती मोबाइल की घंटी
फ्रेम कहां से सैट करूँ ?
बाइट कहाँ से लाऊं मैं ?
आकाओं को मासूमों की बेबसी,
तड़पती, अधनंगी महिलाओं का दर्द
जवान बेटे के रूप में बुढ़ापे की लापता लाठी खोजते बुजुर्ग
और
गृहमंत्री का बयान
सब चाहिए...
बाइट की शक्ल में
बाइट बिना भी 'पैकेज' बनता है ?

आतंक–पांच
आतंकवादियों !
मुझे मारो
हक है तुम्हारा
आखिर, आतंक फैलाना काम है तुम्हारा
लेकिन, जेब में 'आईकार्ड' रखने का मौका दो
भाई,
मेरे मुल्क में मुआवजा मिलना इतना आसान भी नहीं !

पत्राचार का पताः
227, मीडिया टाइम्स अपार्टमेंट
अभयखंड–चार, इंदिरापुरम
गाजियाबाद– 201012

गुमशुदा की तलाश

–अशोक कुमार शुक्ला

मुझे तलाश है
रिश्तों की एक नदी की
जो गुम हो गयी है
कंक्रीट के उस जंगल में
जहाँ स्वार्थ के भेड़िए,
कपट के तेंदुए,
छल की नागिनों जैसे
सैकड़ों नरभक्षी किसी भी
रिश्ते को लील जाने को
हरपल आतुर हैं
इस अभ्यारण्य में
मौकापरस्ती के चीते जैसे
जंगली जानवर
हर कंक्रीट की आड़ में,
इसलिये मुझे लगता है
कि रिश्तों की वह निरीह नदी
कहीं दुबककर रो रही होगी
याकि निवाला बन गयी होगी
इन कंक्रीट के बासिंदों का,
और अब प्यास बनकर
उतर गयी होगी
उन नरभक्षियां के हलक में ?
जाने क्यों ?
फिर भी मुझे तलाश है
रिश्तों की उस नदी की
जो बीते दिनों में
तब बिछड़ गयी थी मुझसे
जब मैं शाम को खाने के लिये
रोजगार की लकड़ियां बीनने
चला आया था
इस कंक्रीट के जंगल में !

पत्राचार का पताः
तपस्या, 2–614, सेक्टर 'एच'
जानकीपुरम, लखनऊ– 226021

कुछ नये रंग

–शिखा कम्बोज

जिंदगी के कुछ नये रंग देखे,
कभी सुर्ख तो कभी फीके से लगे,
कभी कोई रंग खुशी दे गया तो,
कभी कोई रंग गम की छाँव सा लगा,
जब भी लगा पहुंच गया मैं मंजिल की ओर
न जाने क्यों फिर एक नया मोड़ दिखा...
जिंदगी के कुछ नये रंग देखे,
कभी सुर्ख तो कभी फीके से लगे,
यूं तो जिंदगी रुकती नहीं किसी मोड़ पर,
चलती ही रही हर राह पर,
पर चलते–चलते जब थके हम कभी
हर मोड़ पर, नए मोड़ मिले कई हमें
जिंदगी के कुछ नये रंग देखे,
कभी सुर्ख तो कभी फीके से लगे,
जिद थी हमें भी ना रूकने की यू हीं
इसलिए हर राह पर हौसले नए मिले,
लोगों की इस भीड़ में चंद चेहरे
अपने से मिले
जिंदगी के कुछ नये रंग देखे,
कभी सुर्ख तो कभी फीके से लगे,
जिंदगी में ना हार होती है और ना ही जीत है
इसके हर रंग में एक सीख है,
न भूलो तुम कि ये जीवन अनमोल है
इसके सिवा दुनिया में हर किसी का मोल है,
न हारो हौसला जीवन में तुम,
के कोई तो वो एक मोड़ है,
जो जाता मंजिल की ओर है....

पत्राचार का पताः
2595, हडसन लेन
नॉर्थ कैम्पस, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली ।

आरजू

–चैतन्यमूर्ति

(1)

इंतजार की इंतिहा हो गयी
तेरी बाट जोहते–जोहते
इत्तिफाक़ से आ गयी हो
तो लौट के न जाना
आरजू बस इतनी कि
तेरी पलकों की छाँव में
गुजार दूँ –
जिन्दगी के शेष पल ।

(2)

तमन्ना थी –
तुझे चाँद कहता
दिल का अरमान कहता
तेरी झलक मिल जाती
मन–आंगन का आफताब कहता
दूर क्या हुआ
तूने दूसरा जहां बसा डाला
मेरे जहां में अब कौन था
किसको, कहाँ, क्या कहता ।

(3)

दिखती है बारिश मानो
धरती पर उतर रहे हों तारे
सब एक साथ
तेरा बूंदो से भीगा चेहरा
जैसे तारों बीच पूनम का चाँद
तुम्हे बारिश में भीगते हुए देखा
लगा –
धरती पर आसमां उतर आया है ।

पत्राचार का पताः
10/11, कैशिया रोड,
शिप्रा सनसिटी, इन्दिरापुरम
गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश

खुली पाठशाला फूलों की

–तारादत्त निर्विरोध

खुली पाठशाला फूलों की
पुस्तक–कॉपी लिए हाथ में
फूल धूप की बस में आए

कुर्ते में जँचते गुलाब तो
टाई लटकाए पलाश हैं,
चंपा चुस्त पज़ामें में है
हैट लगाए अमलताश है ।

सूरजमुखी मुखर है ज़्यादा
किंतु मोंगरा अभी मौन है,
चपल चमेली है स्लेक्स में
पहचानों तो कौन–कौन है ।

गेंदा नज़र नहीं आता है
जुही कहीं छिपाकर बैठी है,
जाने किसने छेड़ दिया है
गुलमोहर ऐंठी–ऐंठी है ।

सबके अपने अलग रंग हैं
सब हैं अपनी गंध लुटाए,
फूल धूप की बस में आए
मुस्कानों के बैग सजाए ।

पत्राचार का पताः
254, पद्मावती कॉलोनी
'ए' अजमेर रोड, जयपुर

जो भरा नहीं है भावों से
बहती जिसमें रस धार नहीं
वो हृदय नहीं है पत्थर है
जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं
गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही'

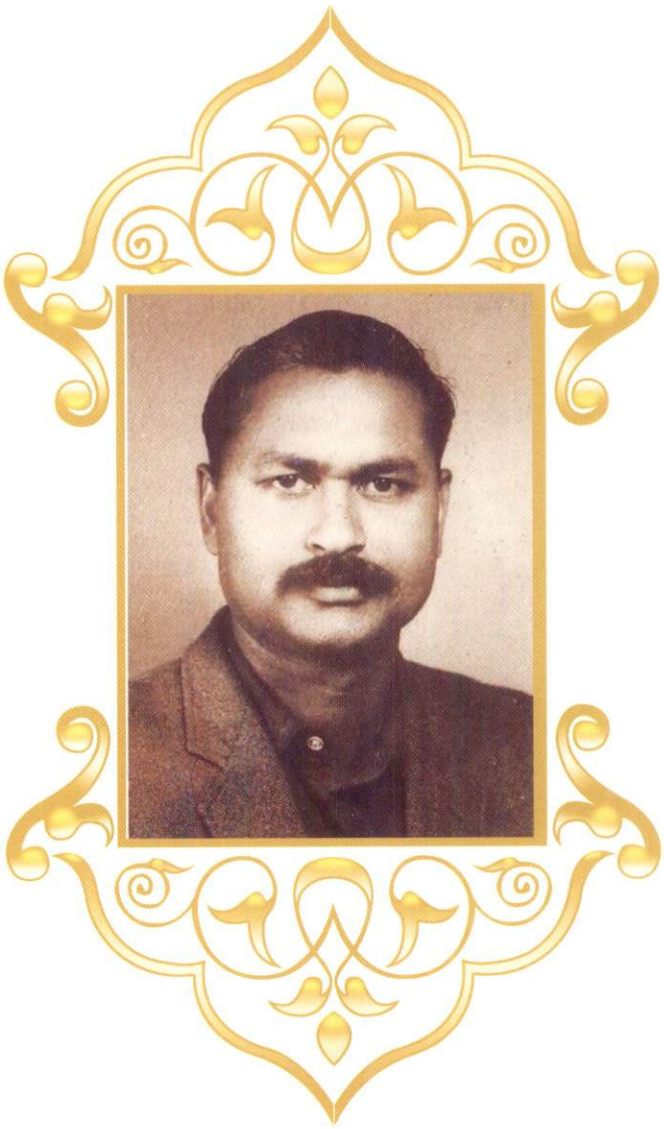

सुदामा पांडेय 'धूमिल'

(जन्म: 9 नवम्बर, 1936; निधन: 10 फरवरी, 1975)

शब्द किस तरह / कविता बनतें हैं
इसे देखो / अक्षरों के बीच गिरे हुए
आदमी को पढो / क्या तुमने सुना है कि यह
लोहे की आवाज़ है या
मिट्टी में गिरे हुए खून का रंग ।
लोहे का स्वाद
लोहार से मत पूछो
घोड़े से पूछो
जिसके मुंह में लगाम है ।

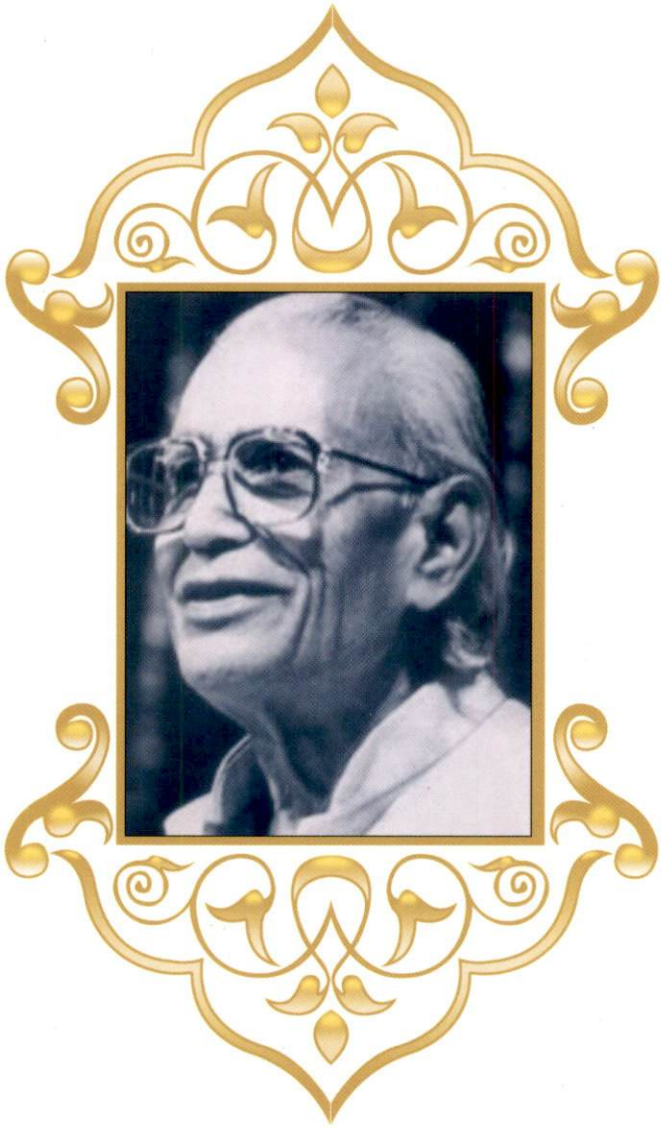

धर्मवीर भारती

(जन्म: 25 दिसम्बर, 1926; निधन: 4 सितम्बर, 1997)

चरण वे जो / लक्ष्य तक चलने नहीं पाये
वे समर्पण जो न / होठों तक कभी आये
कामनाएं वे नहीं / जो हो सकीं पूरी ।
घुटन अकुलाहट
विवशता, दर्द, मज़बूरी
जन्म-जन्मों की अधूरी साधना, पूर्ण होती है
किसी मधु-देवता / की बांह में।